ISSN-2230-7540

सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तिय प्रबन्ध का आलोचनात्मक अध्ययनः- ग्वालियर संभाग के सन्दर्भ में (विशेष सन्दर्भ २००१ से)

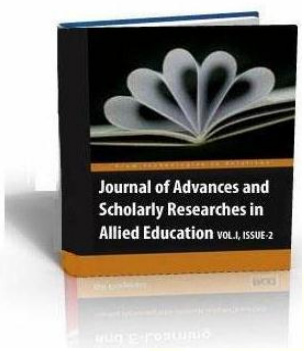

Abhinay Chaturvedi*
Research Scholar

A. K. Agarwal
(D. Let) SRK College Firozabad (U. P.)

सार :–

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये शोर्धाथी द्वारा प्रस्तुत अध्ययन (सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तिय प्रबन्ध का आलोचनात्मक अध्ययनः– ग्वालियर संभाग सन्दर्भ में (विशेष सन्दर्भ 2001 से) के अन्तर्गत समस्या का चयन वैज्ञानिक आधार पर किया गया है। तथा मध्य प्रदेश में सार्वजनिक उपक्रमों में – सरकार द्वारा भारी मात्रा में विनयोग किया गया है। परन्तु यह विनयोग उचित प्रतिफल प्रदान करने में असर्मथ रहा है। साथ ही सार्वजनिक उपक्रम निम्न लाभदायकता की समस्या का सामना कर रहे हैं। कई उपक्रम भारी हानि वहन कर रहे हैं जो उपक्रम लाभ की स्थिति में है। उनमें भी लाभ की दर में वृद्धि नहीं हो पा रही है। इस प्रकार औसत रूप में उपक्रमों की वित्तीय स्थिति असन्तोष जनक है। उपक्रमो की इस स्थति के लिये कई कारक उत्तरदायी हैं इन कारकों में अर्जित लाभों के समुचित प्रबन्ध का अभाव प्रमुख है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की विषय वस्तु पर इस शोध कार्य के गहन अध्ययन हेतु विशेष ध्यान दिया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मध्य प्रदेश के ग्वालियर संभाग के सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रबन्धन, उसकी संरचानात्मक अवधारणा एवं श्रोत सार्वजनिक उपक्रमों की स्थाई सम्पत्तियों का प्रबन्ध, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता सार्वजनिक उपक्रमों को आय का प्रबन्ध तथा वित्तीय प्रशासन एवं नियंत्रण आदि का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना :–

ग्वालियर संभाग मध्यप्रदेश का एक महत्वपूर्ण संभाग है इस संभाग का ग्वालियर जिला प्रदेश के प्रमुख औधोगिक केन्द्रों में से एक है इसकी गणना प्रदेश के प्रमुख एवं विकसित संभागों में की जाती है। कृषि, खनिज एवं वनसम्पदा से सम्पन्न यह

ISSN-2230-7540

संभाग औधोगिक प्रगति के लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करता है वास्तव में किसी भी देश के औधोगिक विकास में वहाँ उपलब्ध संसाधनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है यहाँ पर उपलब्ध संसाधन इस क्षेत्र में वास्तविक विकास में आधार रचना का कार्य करते हैं।

ग्वालियर संभाग में वित्तीय प्रबन्ध की विचारधारा में 2001 से 2011 तक परिवर्तन के साथ–साथ वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। वित्त कार्य की परम्परागत व्याख्या के अनुसार वित्त प्राप्ति की व्यवस्था तथा उससे सम्बन्ध प्रासंगिक एवं अनुसंगिक कार्यों को इसके क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता रहा है, किन्तु आधुनिक व्यवसाय के सन्दर्भ में वित्तीय प्रबन्ध का क्षेत्र और अधिक व्यापक हो गया है। व्यापक अर्थ में, वित्त प्राप्ति की व्यवस्था के साथ–साथ उपलब्ध कोषों के प्रभावपूर्ण उपयोग की प्रक्रिया भी वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में सम्मिलित की जाती है। इस प्रकार वित्तीय प्रबन्ध का कार्य आवश्यक कोषों की व्यवस्था कर लेने के बाद समाप्त नही हो जाता बल्कि, अपेक्षित वित्त की व्यवस्था कर लेने के साथ–साथ यह देखना भी होता है कि उपलब्ध कोषों का उपयोग विभिन्न विभागों द्वारा व्यवसाय के पूर्व निर्धारित उददेश्यों की पूर्ति के लिए समुचित रूप से किया गया है अथवा नहीं।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के वित्तीय स्त्रोत

सार्वजनिक क्षेत्र में संचालित व्यवसायिक तथा औद्योगिक प्रवृत्ति वाले उपक्रमों के निर्वाध संचालन हेतु उनकी सुदृढ़ एवं स्वतंत्र वित्तीय व्यवस्था एक आवश्यक तत्व है। 18 उपरोक्त कथन सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था पर प्रका''ा डालता है सार्वजनिक उपकमों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र के आर्थिक विकास को त्वरित करना है। अतः इन उपक्रमों के क्षेत्र में कुछ ऐसे उपक्रम भी स्थापित किये जाते हैं जिनकी परिपक्वता अवधि तथा लाभ अर्जित करने की अवधि लम्बी होती है। इस प्रकार के उपक्रमों में विशाल पूंजी की आवश्यकता होती है। सार्वजनिक उपक्रमों को वित्तीय प्रबन्ध में स्वतंत्रता प्राप्त होने के कारण इन्हें प्रारम्भिक अंशदान सरकार से तो अवश्य प्राप्त होता है, किन्तु अपनी बाद की आवश्यकताओं के लिए इन्हें सरकार अथवा जनता अथवा अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है। निःसन्देह ऐसे उपक्रम स्थापना के पश्चात प्रायः पूर्णतः व्यवसायिक सिद्धान्तों पर कार्य करते हैं तथा व्यवसायिक सिद्धान्तों के आधार पर ही अपनी वित्तीय व्यवस्था करते हैं। डॉ0 लक्ष्मी नारायण के अनुसार, सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित उपक्रमों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के निम्नलिखित स्त्रोत हो सकते हैं। सरकार द्वारा प्रदत्त पूंजी तथा ऋण –

1. आन्तरिक स्त्रोत
2. पूंजी बाजार
3. सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से ऋण
4. सरकारी सहायता एवं अनुदान।

ISSN-2230-7540

5. कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध

6. निवेशी विनियोजन

7. जन–निक्षेप

8. बन्ध–पत्र

9. आन्तरिक ऋण्साग्रहण

मध्य प्रदेश में स्थापित सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के वित्तीय स्रोत क्या है? इस सम्बन्ध में शोधकर्ता द्वारा वार्षिक प्रतिवेदनों का अध्ययन एवं सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रबन्धकों से विचार विमर्श करने के उपरान्त ज्ञात हुआ कि मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा स्थापित उपक्रमों के निम्नलिखित वित्तीय स्रोत हैं:

(1) अंश पूंजी – सार्वजनिक उपक्रमों की वित्त व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्रोत सरकार द्वारा अंशपूंजी प्रदान करना है। विभागीय उपक्रमों में तो सम्पूर्ण वित्तीय आश्यकतायें सरकार द्वारा ही पूर्ण की जाती है, जबकि गैर–विभागीय उपक्रमों की वित्त–व्यवस्था का एक बड़ा भाग सरकार द्वारा पूर्ण किया जाता है। सरकारी कम्पनियों की दशा में अंश पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत भाग सरकार द्वारा प्रदान करना आवश्यक है। सरकार द्वारा इन उपक्रमों को प्रदान की गयी अंशपूंजी चिरस्थायी रूप से ब्याज मुक्त होती है। किसी उपक्रम के स्वामित्व का उपक्रम की पूंजी से सम्बन्ध होता है। जिस व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा स्वानिगत पूंजी की व्यवस्था की जाती है उसका ही उपक्रम पर स्वामिगव होता है। सार्वजनिक उपक्रमों की स्थिति में यह स्वामित्व सरकार के पास होता है, क्योंकि कुल पूंजी की 51 प्रतिशत पूंजी की पूर्ति सरकार द्वारा की जाती है। सरकार सार्वजनिक उपक्रमों की स्वामिगत पूंजी में जनता को आमन्त्रित कर सकती है।

(2) सरकारी ऋण और अनुदान – सार्वजनिक उपक्रमों की पूंजी के एक भाग की व्यवस्था सरकार इन उपक्रमों को ऋण प्रदान करके भी करती है। सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों को दिये गये ऋण की मात्रा सामान्यतः कुल पूंजी का 50 प्रतिशत होती है। सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों को प्रदान किये जाने वाले ऋण पर ब्याज की दर समय–समय पर परिवर्तित भी होती रहती है। इस प्रकार के ऋण प्राप्त करने वाले वे सार्वजनिक उपक्रम होते हैं जो शीघ्र ही अपना उत्पादन कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार के उपक्रमों को सरकार से प्राप्त ऋण पर उन उपक्रमों की अपेक्षा कम दर से ब्याज देना पड़ता है, जो कि विलम्ब से अपना उत्पादन कार्य चालू करते हैं। सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा गैर–वाणिज्यिक उददेश्यों को पूर्ण करने अथवा सरकारी निर्देश पर कम मूल्य पर वस्तुओं के विक्रय पर होने वाली हानि को पूरा करने के लिए सरकार ऐसे उपक्रमों को अनुदान देती है। इस प्रकार सरकार से प्राप्त अनुदान से सार्वजनिक उपक्रम अपनी वित्तीय व्यवस्था में सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं।

ISSN-2230-7540

(3) सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों से ऋण – 1961 में सरकार द्वारा यह निर्णय किया गया कि सामान्यतः औद्योगिक वित्त निगम द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों को वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए। 1964 में औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना के समय भी सरकार ने अपने उपर्युक्त निर्णय को पुनः दोहराया। सरकार की इस नीति में बदलाव 1969 में आया। सरकार ने यह अनुभव किया कि क्यों न निजी क्षेत्रों के उपक्रमों की भांति सार्वजनिक उपक्रम भी सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं पर अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहें। इस सरकारी निर्णय में इस बात का उल्लेख किया गया कि सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से सार्वजनिक उपक्रम कुछ निश्चित शर्तों की पूर्ति करके ही वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकेंगे। 1971 में सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं को निजी उद्योगपतियों की समान शर्तों पर ही सार्वजनिक उपक्रमों को भी वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अधिकृत किया गया। इस प्रकार सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सार्वजनिक वित्तीय संस्थांए भी एक स्रोत रही है। यद्यपि सार्वजनिक उपक्रमों में सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता प्राप्त करने की प्रथा अधिक प्रचलित नहीं है क्योंकि अधिकांश सार्वजनिक उपक्रम वित्तीय संस्थाओं के दरवाजे खटखटाने की बजाय सरकार से ऋण प्राप्त करना सुविधाजनक एवं सस्ता समझते हैं।

(4) आन्तरिक स्रोत – सार्वजनिक उपक्रमों में आन्तरिक स्रोतों से वित्त प्राप्त करने का प्रमुख माध्यम अर्जित लाभ का पुनर्विनियोजन है। उपक्रम द्वारा अर्जित समस्त लाभ अंशधारियों में नहीं बांटा जाता है, बल्कि इसका कुछ भाग रोककर कुल संचय बनाया जाता है। इस संचय का उपयोग उपक्रम की भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व सरकार के हाथ में होता है। अतः सार्वजनिक उपक्रमों की स्थिति निजी क्षेत्र की कम्पनियों से भिन्न होती है सरकार सार्वजनिक उपक्रमों की प्रमुख अंशधारी अवश्य होती है, किन्तु उसका दृष्टिकोण निजी अंशधारियों की तरह लघुकालीन नहीं होता है। सरकार किसी उपक्रम विशेष द्वारा अर्जित किये लाभ का पुनर्विनियोजन करते समय उस उपक्रम के ही नहीं अपितु समस्त राज्य एवं राष्ट्र के आर्थिक ढांचे को ध्यान में रखकर विचार करती है। अतः सरकार द्वारा विचार विमर्श करके यह निर्णय लिया जाता है कि लाभ का कितना हिस्सा उस उपक्रम के आन्तरिक विकास के लिए संचित के रूप में छोड़ दिया जाये तथा कितना हिस्सा सरकारी खजाने में राज्य एवं राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए हस्तान्तरित किया जाये।

उपक्रमों में आन्तरिक साधनों की उत्पत्ति अन्य दो स्रोतों से भी होती है – ह्रास तथा अर्जित लाभ। ह्रास की संचित राशि प्रायः उपक्रमों के पास ही रहती है। इस संचिति का प्रयोग सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन हेतु किया जाता है। किन्तु सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन का प्रश्न प्रायः लम्बी अवधि के बाद उठता है तब तक इस संचिति का उपयोग उपक्रम के प्रसार के लिए किया जाता है। वास्तव में संचित वित्त का कोई अतिरिक्त साधन नहीं है, जबकि अर्जित लाभ एक अतिरिक्त साधन है। व्यवहार में दोनों स्रोतों में उपयोग की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता तथा दोनों ही का उपयोग उपक्रम के विकास एवं विस्तार के लिए किया जाता है।

ISSN-2230-7540

सार्वजनिक क्षेत्र की मुख्य वित्तीय समस्यायें

पूंजी निर्माण की निम्न दर तथा मुद्रा प्रसार की तीव्र गति के कारण सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय क्षेत्र में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गयी है। पूंजी निर्माण की निम्न दर के कारण सार्वजनिक क्षेत्र को आंतरिक साधनों से बहुत ही कम मात्रा में पूंजी प्राप्त हो रही है। मुद्रा प्रसार के कारण वेतनों तथा कच्चे माल के मूल्य निरन्तर बढ़ते रहने के कारण लागत नियन्त्रण भी सार्वजनिक क्षेत्र की प्रमुख समस्या बनी हुयी है। सार्वजनिक क्षेत्र में वित्तीय साधनों की प्राप्ति एवं इन साधनों के विवेकपूर्ण प्रयोग की समस्या के अतिरिक्त अनेक ऐसी समस्यायें है जो कि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास में बाधक बनी हुयी हैं। ये प्रमुख समस्यायें निम्न प्रकार से है–

(1) वित्तीय नियोजन की समस्या– भावी कार्यक्रम की रूपरेखा को पहले से ही निर्धारित करने का ही दूसरा नाम नियोजन है। उचित लाभोपार्जन के सिद्धान्त को व्यवसायिक संचालन का उददेश्य मान लेने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि उपक्रम का वित्तीय नियोजन प्रारम्भ से ही अनुभवी एवं विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाये ताकि उचित लाभोपार्जन के उददेश्य को प्राप्त किया जा सके किन्तु, दुर्भाग्यवश सार्वजनिक क्षेत्र में अभी भी यह समस्या बनी हुयी है जो कि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को रोक रही है।

(2) वित्तीय अनुशासन की समस्या– सार्वजनिक क्षेत्र की दूसरी महत्वपूर्ण समस्या वित्तीय अनुशासन की है। इस समस्या को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. वित्तीय संगठन की समस्या।
2. सम्पत्तियों के प्रभावपूर्ण प्रबन्ध की समस्या।

(3) वित्तीय नियन्त्रण की समस्या– सार्वजनिक क्षेत्र की तीसरी महत्वपूर्ण समस्या वित्तीय नियन्त्रण की है। चूंकि वित्तीय नियन्त्रण, वित्तीय प्रशासन का प्रमुख अंग है, वस्तुतः इसके बिना व्यवसायिक लक्ष्यों को प्राप्त करना सम्भव नहीं है, यह सब जानते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में वित्तीय नियन्त्रण की आधुनिक विधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है, जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र में वित्तीय नियन्त्रण की समस्या विद्यमान है।

(4) निम्न लाभप्रदता की समस्या– यह सार्वजनिक क्षेत्र की चौथी महत्वपूर्ण समस्या है जिस अनुपात में सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोजन की राशि बढ़ रही है उस अनुपात से सार्वजनिक क्षेत्र की लाभप्रदता में वृद्धि नहीं हो रही है, जो कि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास की मुख्य कमी है।

(5) प्रभावी बजटिंग की समस्या– सार्वजनिक क्षेत्र की अगली महत्वपूर्ण समस्या प्रभावी बजटिंग की रही है। सार्वजनिक क्षेत्र में बजटिंग का कार्य प्रायः वित्त–विभाग द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस वित्त विभाग में स्वयं के संगठन एवं योग्य

ISSN-2230-7540

व्यक्तियों की कमी होने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में प्रभावी बजटिंग–पूंजी बजट, रोकड़ बजट तथा लोकपूर्ण बजट की समस्या बनी हुयी है।

(6) कार्यशील पूंजी की समस्या– यह सार्वजनिक क्षेत्र की छठी महत्वपूर्ण समस्या है। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रायः कार्यशील पूंजी दो स्रोतों – दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन से प्राप्त की जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र इन दोनों ही स्रोतों के द्वारा पूंजी एकत्रित करने में सहायक नहीं है, जिसके कारण सार्वजनिक क्षेत्र को कार्यशील पूंजी की समस्या का सामना करना पड़ता है।

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन ''(सार्वजनिक उपक्रमों का वित्तीय प्रबन्धन का आलोचनात्मक अध्ययन, (ग्वालियर सम्भाग के सन्दर्भ में)''– विशेष सन्दर्भ 2001 से) स्थायी पूँजी, कार्यशील पूँजी एवं आय के लाभप्रद प्रबन्ध की उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर ही सम्पन्न किया गया है)। वर्तमान अध्ययनों मध्यप्रदेश के चयनीत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के वित्तीय प्रबन्ध का परीक्षण एवं संरचानात्मक अध्ययन सम्मिलित है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रबन्ध से सम्बन्धित है जो कि अधिकतम शोध प्रयासों के माध्यम से प्रदेश के ग्वालियर सम्भाग के सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रबन्ध के महत्वपूर्ण पहलुओं वित्तीय प्रबन्ध का संरचानात्मक अवधारणा, स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध, कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध, आय का प्रबन्ध एवं वित्तीय प्रशासन एवं नियन्त्रण पर गहराई से प्रकाश डालता है। परन्तु अभी भी वित्तीय प्रबन्ध के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनका सार्वजनिक उपक्रमों के सफलतापूर्वक कार्यसंचालन में महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ संकेत :

1. इजरा सोलोमन : द थयोरी ऑफ फायनेन्सियल मैनेजमेन्ट, कोलम्बिया, यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, वर्ष 1961, पृ.–7
2. कुलश्रेष्ठ, आर. एस. : निगर्पो का वित्तीय प्रबन्ध, साहित्य भवन, आगरा, वर्ष 1984, नवम संस्करण, पृ. 2
3. शर्मा, डी. सी. : वित्तीय प्रबन्ध के मूल तत्व, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ, वर्ष 1986–87, द्वितीय संस्करण, पृ.–5
4. ठाकुर, के. एस. : 'जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक, ग्वालियर के वित्तीय प्रबन्ध' का अध्ययन अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वर्ष 1983, पृ.–3
5. हाम्पटान जान जे. : फायनेन्सियल डिसीजन मेकिंग, प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया (प्रा0) लि0 न्यू देहली, वर्ष 1983, पृ. –5

ISSN-2230-7540

6. स्वर्न, विभूति भूषण : फायनेन्सियल मैनेजमेन्ट इन सिलेक्टेड स्टेट लेबल कारपोरेशन इन उड़ीसा, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वर्ष 1986, पृ.–33

7. स्वैन, विभूति भूषण : फायनेन्सियल मैनेजमेन्ट इन सिलेक्टेड स्टेट लेबल कारपोरेशन इन उड़ीसा, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वर्ष 1986, पृ.–34

8. माथुर, बीएल. : भारत में लोक उद्योग, साहित्य भवन, आगरा, वर्ष 1998, तृतीय संस्करण, पृ.–342

9. लक्ष्मीनारयाण : प्रिन्सिपल एण्ड प्रेविटस ऑफ पब्लिक इन्टरप्राईज मैनेजमेन्ट, एम0 चान्द कम्पनी (प्रा.) लि., नई दिल्ली, वर्ष 1988, तृतीय संस्करण, पृ.–344

10. लोक उद्योग, 2001, पृ.–415

Corresponding Author

Abhinay Chaturvedi*

Research Scholar

E-Mail – chaturvediabhinay@gmail.com

GNITED MINDS Journals